Page No.:
Date:

UG study material for students of History

Subject : History

class : UG Semester IV
Paper : MJC-05

Topic : चोलों की प्रशासनिक व्यवस्था-II

By : Dr. Rajiv Nayan
Associate Professor,
Deptt. of History,
Jagjiwan College, Ara.

Scanned by CamScanner

चोलों की प्रशासनिक व्यवस्था - II

चोल सम्राटों ने अपनी प्रबल सैनिक-शक्ति के बल पर एक विशाल साम्राज्य निर्मित किया तथा इनकी नौसैनिक शक्ति तो अभूतपूर्व थी ही। अपनी इसी शक्ति के इस्तेमाल से उन्होंने दक्षिणपूर्व एशिया पर भी अपना प्रभाव स्थापित किया। हस्तिबल, अश्वारोही तथा पैदल सैनिकों के अतिरिक्त नौसेना सुव्यवस्थित ढंग से संगठित थी। सेना कड़ाम या पडैविडु (छावनी) में रहती थी। सैनिकों के समुचित प्रशिक्षण, अभ्यास तथा अनुशासन पर बल दिया जाता था। इतिहास के तथ्य साक्षी हैं कि साठ हजार का विशाल हस्तिदल तथा डेढ़ लाख पैदल सैनिक चोल सेना में थे। सम्राट के व्यक्तिगत अंगरक्षक को 'वेडैक्कार' कहा जाता था।

चोलों की न्याय-व्यवस्था के विषय में चाऊ-कुआ लिखता है कि "जब कोई अपराध करता है तब दरबार का कोई मंत्री उसे दंड दे सकता है। सामान्य अपराध में दंड-प्रहार तथा जघन्य अपराध के लिए मृत्युदंड की सजा दी जाती थी।"

दक्षिण भारत के अभिलेखों से इस काल के स्थानीय शासन का पता चलता है। स्थानीय शासन में पायी जानेवाली अलाधारण क्षमता इस युग की विशेषता थी।

Scanned by CamScanner

गाँव एक प्रशासकीय इकाई हुआ करता था, और यहाँ तक चोल प्रशासन तथा गुप्त प्रशासन में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं था। परन्तु ग्राम-प्रशासन की प्रकृति में अवश्य ही काफी अंतर था। उस समय में गाँवों को दी गयी यह स्वायत्तता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चोल अधिकारी गाँवों के मामलों में प्रशासकों के रूप में नहीं, बल्कि परामर्शदाताओं और प्रेक्षकों के रूप में भाग लेते थे। इससे ऊपरी स्तर पर होनेवाले राजनीतिक परिवर्तनों के बहुत अधिक हस्तक्षेप के बिना स्थानीय उन्नति और विकास निरंतर होते रहे, और अंशतः यही कारण है कि इस उपमहाद्वीप के अन्य भागों की तुलना में तमिल प्रदेश में अधिक व्यापक सांस्कृतिक निरंतरता देखी जा सकती है।

इस काल में विकसित होने वाली ग्राम स्वायत्तता के पीछे आधारभूत मान्यता यह थी कि प्रत्येक गाँव का शासन स्वयं ग्रामीणों द्वारा ही होना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए ग्रामसभा का संगठन होता था और इसी सभा में सत्ता निहित होती थी। बड़े गाँवों में, जहाँ ग्रामीण संगठन अधिक जटिल होता था, विभिन्न प्रकार की सभाएँ होती थीं, जिनमें उदाहरण

Scanned by CamScanner

की अपेक्षाओं के अनुसार एक ग्रामीण दो या अधिक सभाओं का सदस्य हो सकता था। गाँव हलकों में बाँटा जा सकता था और प्रत्येक हलका अपने सदस्यों की एक सभा बुला सकता था। जहाँ तक इन सभाओं में सदस्यता का प्रश्न है, इसके सदस्य व्यावसायिक समूहों के प्रतिनिधि; जैसे - बढ़ई, सुनार, लोहार आदि, अथवा ग्राम के अन्य कार्यों, जैसे- स्थानीय मंदिर की देख-भाल करने वाले समूह में से कुछ लोग हो सकते थे। इन विविध समूहों के परस्पर संबंध गाँव के सामाजिक जीवन का आधार होता था। इन छोटे-छोटे समूहों के अतिरिक्त एक महासभा भी होती थी।

इस महासभा में अधिकांश स्थानीय निवासी होते थे और इनकी तीन श्रेणियाँ होती थीं: 'उर' में एक साधारण ग्राम के करदाता सदस्य रहते थे, 'सभा' में केवल ग्राम के ब्राह्मण निवासी होते थे अथवा यह 'सभा' केवल उन ग्रामों में होती थी जो ब्राह्मणों को दान दिये गये होते थे, और अंत में 'नगरम' सामान्यतः व्यापारिक केन्द्र में होते थे; क्योंकि ये पूर्णतया व्यापारिक हितों की रक्षा के लिये होते थे। कुछ गाँवों में 'उर' और 'सभा' साथ-साथ होती थी।

उत्तरमेरूर के 919 ई० तथा 929 ई० के दो लेखों से स्थानीय 'महासभा' की कार्य संचालन-प्रणाली

पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। 'वारियम्' (कार्यकारिणी समिति) की सदस्यता के लिये 35 से 70 वर्ष की आयु वाले ऐसे व्यक्ति का नामांकन होता था जिसके पास लगभग एक-डेढ़ एकड़ भूमि हो तथा जो अपनी भूमि पर बने मकान में रहने वाला हो। साथ ही, वह वैदिक मंत्रों का जानकार हो। तीन वर्षों तक समिति में रह चुकने, हिसाब प्रस्तुत न करने, चोरी करने वाले तथा पाप-कर्मों के भागी व्यक्ति नामांकन के लिए अयोग्य समझे जाते थे। एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि कभी-कभी चुनाव के नियम सम्राट् के द्वारा निर्धारित किये जाते थे किन्तु, अधिकतर ग्रामसभा द्वारा ही इसके निर्धारण का प्रचलन था। 'वारियम' की तीस सदस्यों में से उपवन (तोटनवारियम्), जलाशय (एरिवारियम्), स्वर्ण-संबंधी समिति (पनवारियम) आदि समितियाँ निर्मित होती थीं। किन्तु प्रत्येक गाँव में समितियों की संख्या एकसमान नहीं होती थीं। महासभा को 'पेरुंगुरि', इसके सदस्यों को 'पेरुमुक्कल' तथा समिति के सदस्यों को 'वारियप्पेरुमक्कल' कहा जाता था। सभा की बैठक गाँव के मन्दिर, वृक्ष के नीचे या जलाशय के किनारे होती थी।

सार्वजनिक भूमि पर 'महासभा' का स्वामित्व होता था, साथ ही व्यक्तिगत भूमि पर

Scanned by CamScanner

भी इसका न्यायिक अधिकार था। जंगल को काटकर कृषियोग्य भूमि बनाना, गाँव की भूमि के उत्पादन तथा उस पर राजस्व का आकलन करने में केन्द्रीय अधिकारियों की सहायता करना, राजस्व वसूलना, कर न देने वाले की भूमि नीलाम करना, भूमि तथा सिंचाई संबंधी झगड़ों का फैसला करना आदि 'महासभा' के प्रमुख कार्य थे। गाँव के हित के लिये 'महासभा' कर (Tax) भी लगा सकती थी। न्याय समिति (न्यायतार) वेतन प्राप्त अधिकारियों की सहायता से अपराध का पता लगाती थी। इन ग्राम-सभाओं तथा सर्वसाधारण लोगों को 'फर' नामक संस्थाओं को 'लघु गणतंत्र' कहना सर्वथा उपयुक्त है।

चोल काल के प्रारंभ में गाँव आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर थे। अपने अन्न-वस्त्र की व्यवस्था यहाँ स्वयं होती थी। बड़े पैमाने पर उत्पादन नहीं होने के कारण अन्य क्षेत्रों से कोई उल्लेखनीय विनिमय नहीं था। ग्यारहवीं शताब्दी से जब चोल काल में व्यापार का विस्तार बढ़ा तो नगरों का विकास हुआ और उसी के साथ-साथ गाँवों की स्थिति भी बदली। ग्रामीण अर्थतंत्र में मुद्रा-प्रणाली का सूत्रपात हुआ।

निष्कर्षतः, यह कहा जा सकता है कि एक शक्तिशाली केन्द्रीय नियंत्रण एवं स्थानीय स्वशासन के साथ चोलों ने एक ऐसी राजनीतिक पद्धति का निर्माण किया जिसमें कठोरता के साथ-साथ जनकल्याण की भावना भी निहित थी।

Scanned by CamScanner